संस्कृत के कालजयी अमर ग्रंथ

कौटिल्य अर्थशास्त्र

रूपान्तरकार

प्रो. इन्द्र

कौटिल्य अर्थशास्त्र

(चाणक्य-रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र'
का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर)

कौटिल्य

राजपाल

रूपान्तरकार
प्रो. इन्द्र

मूल्य : **............. रुपये (Rs. 000.00)**

संस्करण : 2009 © राजपाल एण्ड सन्ज़
ISBN : 978-81-7028-210-5
KAUTILYA ARTHSHASTRA by Kautilya

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-**110 006**
websites : www.rajpalpublishing.com
e-mail :mail@rajpalpublishing.com

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' का हिन्दी में संक्षिप्त रूपान्तर है। इसका प्रयोजन साधारण हिन्दी जगत् को प्राचीन भारतीय साहित्य की इस अनुपम कृति से परिचित कराना है।

सर्वप्रथम सन् 1905 में दक्षिण भारत के तंजौर जिला निवासी एक ब्राह्मण ने मैसूर गवर्नमेंट प्राच्य पुस्तकालय में 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' की एक हस्तलिखित प्रति भेंट की। पुस्तकालय के तत्कालीन अध्यक्ष शाम शास्त्री ने इस प्रति का सूक्ष्म अध्ययन करके इसका प्रथम संस्करण 1909 में प्रकाशित किया और पुस्तक के साथ प्राप्त भट्टस्वामी की आंशिक टीका के आधार पर 1915 में इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी प्रकाशित किया।

पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही भारत तथा पाश्चात्य देशों में हलचल-सी मच गई, क्योंकि इसमें शासन-विज्ञान के उन अद्भूत तत्त्वों का वर्णन पाया गया, जिनके सम्बन्ध में भारतीयों को सर्वथा अनभिज्ञ समझा जाता था। पाश्चात्य विद्वान् फ्लीट, जौली आदि ने इस पुस्तक को एक 'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण' ग्रन्थ बतलाया और इसे भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण में परम सहायक साधन स्वीकार किया।

इस पुस्तक की रचना आचार्य विष्णुगुप्त ने की, जिसे कौटिल्य और चाणक्य नामों से भी स्मरण किया जाता है। पुस्तक की समाप्ति पर स्पष्ट रूप से लिखा गया है :

"प्राय: भाष्यकारों का शास्त्रों के अर्थ में परस्पर मतभेद देखकर विष्णुगुप्त ने स्वयं ही सूत्रों को लिखा और स्वयं ही उनका भाष्य भी किया।" (15/1)

साथ ही यह भी लिखा गया है :

"इस शास्त्र ('अर्थशास्त्र') का प्रणयन उसने किया है, जिसने अपने क्रोध द्वारा नन्दों के राज्य को नष्ट करके शास्त्र, शस्त्र और भूमि का उद्धार किया।" (15/1)

विष्णुपुराण में इस घटना की चर्चा इस तरह की गई है : "महापद्मनन्द नाम का एक राजा था। उसके नौ पुत्रों ने सौ वर्ष तक राज्य किया। उन नन्दों को कौटिल्य नाम के ब्राह्मण ने मार दिया। उनकी मृत्यु के बाद मौर्यों ने पृथ्वी पर राज्य किया और कौटिल्य ने स्वयं प्रथम चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार हुआ और बिन्दुसार का पुत्र अशोकवर्धन हुआ।" (4/24)

'नीतिसार' के कर्ता कामन्दक ने भी इस घटना की पुष्टि करते हुए लिखा है : "इन्द्र के समान शक्तिशाली आचार्य विष्णुगुप्त ने अकेले ही वज्र-सदृश अपनी मन्त्र-शक्ति द्वारा पर्वत-तुल्य महाराज नन्द का नाश कर दिया और उसके स्थान पर मनुष्यों में चन्द्रमा के समान चन्द्रगुप्त को पृथ्वी के शासन पर अधिष्ठित किया।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि विष्णुगुप्त और कौटिल्य एक ही व्यक्ति थे। 'अर्थशास्त्र' में ही द्वितीय अधिकरण के दशम अध्याय के अन्त में पुस्तक के रचयिता का नाम 'कौटिल्य' बताया गया है :

"सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और उनका प्रयोग भी जान करके कौटिल्य ने राजा (चन्द्रगुप्त) के लिए इस शासन-विधि ('अर्थशास्त्र') का निर्माण किया है।" (2/10)

पुस्तक के आरम्भ में 'कौटिल्येन कृतं शास्त्रम्' तथा प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इति कौटिलीयेऽर्थशास्त्रे' लिखकर अन्धकार ने अपने 'कौटिल्य' नाम को अधिक विख्यात किया है। जहाँ-जहाँ अन्य आचार्यों के मत का प्रतिपादन किया है, अन्त में 'इति कौटिल्य:' अर्थात् कौटिल्य का मत है—इस तरह कहकर कौटिल्य नाम के लिए अपना अधिक पक्षपात प्रदर्शित किया है।

परन्तु यह सर्वथा निर्विवाद है कि विष्णुगुप्त तथा कौटिल्य अभिन्न व्यक्ति थे। उत्तरकालीन दण्डी कवि ने इसे आचार्य विष्णुगुप्त नाम से यदि कहा है, तो बाणभट्ट ने इसे ही कौटिल्य नाम से पुकारा है। दोनों का कथन है कि इस आचार्य ने 'दण्डनीति' अथवा 'अर्थशास्त्र' की रचना की।

पञ्चतन्त्र में इसी आचार्य का नाम चाणक्य दिया गया है, जो अर्थशास्त्र का रचयिता है। कवि विशाखदत्त-प्रणीत सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' में चाणक्य को कभी कौटिल्य तथा कभी विष्णुगुप्त नाम से सम्बोधित किया गया है।

कहते हैं कि अन्तिम महाराज नन्द (योगानन्द) ने अपने मन्त्री शकटार को श्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को एकत्र करने के लिए कहा। शकटार राजा द्वारा पूर्व में किए गए किसी अपमान से पीड़ित था। उसने एक ऐसे क्रोधी ब्राह्मण को ढूँढ़ना शुरू किया, जो श्राद्ध में उपस्थित होकर राजा को अपने ब्रह्मतेज से भस्म कर दे। खोज करते हुए उसने एक कुरूप, कृष्णकाय ब्राह्मण को देखा, जो किसी जंगल में काँटेदार झाड़ियों को काट रहा था और उनकी जड़ों में खट्टा दही डाल रहा था। शकटार द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर उस ब्राह्मण ने कहा, "इन झाड़ियों के काँटों के चुभने से मेरे पिता का देहान्त हुआ, अत: मैं इन्हें समूचा नष्ट कर रहा हूँ।"

इस क्रोधी ब्राह्मण को शकटार ने उपयुक्त, निमन्त्रण-योग्य ब्राह्मण जाना और उससे महाराज नन्द द्वारा आयोजित ब्रह्मभोज में उपस्थित होने की प्रार्थना की। ब्राह्मण ने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नियत समय पर जब वह ब्राह्मण ब्रह्मभोज के लिए उपस्थित हुआ, मन्त्री शकटार ने आदरपूर्वक उसे सर्वप्रथम आसन पर विराजमान किया। ब्रह्मभोज आरम्भ होने पर जब महाराज नन्द ब्राह्मणों का दर्शन करने के लिए आए तो सर्वप्रथम एक कुरूप, कृष्णकाय, भीषण व्यक्ति को देखकर अति क्रुद्ध होकर कहने लगे : "इस चाण्डाल को ब्रह्मभोज में क्यों लाया गया है ?" ब्राह्मण इस अपमान को सहन न कर सका और उसने भोजन छोड़कर तत्काल अपनी शिखा खोलते हुए यह प्रतिज्ञा की : "जब तक मैं नन्द वंश को समूल नष्ट करके अपने इस अपमान का बदला नहीं ले लूँगा, तब तक मैं शिखा-बन्धन न करूँगा !" ऐसी गर्जना करता हुआ वह ब्राह्मण ब्रह्मभोज से उठकर चला गया। शकटार अपनी इच्छा को पूर्ण होता हुआ देखकर अति प्रसन्न हुआ।

इसी ब्राह्मण ने, जो चाणक्य था, अपनी मन्त्रशक्ति द्वारा अकेले ही नन्द राजाओं का नाश किया और मौर्य चन्द्रगुप्त को, जो स्वयं अपने पिता नन्द द्वारा अपमानित होकर राज्य पर अधिकार करने की चिन्ता में था, भारत के प्रथम सम्राट् के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारत उस समय जनपदों में बँटा हुआ था, जिन पर छोटे-छोटे राजा लोग शासन करते थे। चाणक्य ने उन सबको मौर्य चन्द्रगुप्त के अधीन किया और पहली बार भारत को एक साम्राज्य में संगठित किया। इसी साम्राज्य को चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक ने धर्म-विजयों द्वारा अफगानिस्तान से दक्षिण तक और बंगाल से काठियावाड़ तक विस्तृत किया। इन्हीं मौर्य सम्राटों द्वारा वस्तुत: भारत का एक राष्ट्र-रूप सर्वप्रथम विकसित हुआ, जिसका मूल श्रेय उसी नीति-विशारद, कूटनीतिज्ञ, दूरद्रष्टा ब्राह्मण को है, जिसे कौटिल्य, चाणक्य या विष्णुगुप्त नामों से कहा गया है।

'अर्थशास्त्र' की रचना 'शासन-विधि' के रूप में प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए की गई। अत: इसकी रचना का काल वही मानना उचित है, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त का काल है। पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों ने यह काल 321 ई. पू. से 296 ई. पू. तक निश्चित किया है। कई अन्य विद्वान् सम्राट् सेण्ड्राकोटस (जो यूनानी इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त का पर्यायवाची है) के आधार पर निश्चित की हुई इस तिथि को स्वीकार नहीं करते।

इस 'अर्थशास्त्र' का विषय क्या है? जैसे ऊपर कहा गया है—इसका मुख्य विषय शासन-विधि अथवा शासन-विज्ञान है: "कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधि: कृत:।" इन शब्दों से स्पष्ट है कि आचार्य ने इसकी रचना राजनीति-शास्त्र तथा विशेषतया शासन-प्रबन्ध की विधि के रूप में की। 'अर्थशास्त्र' की विषय-सूची को देखने से (जहाँ अमात्योत्पत्ति, मन्त्राधिकार, दूत-प्रणिधि, अध्यक्ष-नियुक्ति, दण्डकर्म, षाड्गुण्यसमुद्देश्य, राजराज्ययो: व्यसन-चिन्ता, बलोपादान-काल, स्कन्धावार-निवेश, कूट-युद्ध, मन्त्र-युद्ध इत्यादि विषयों का उल्लेख है) यह सर्वथा प्रमाणित हो जाता है कि इसे आजकल कहे जाने वाले अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) की पुस्तक कहना भूल है। प्रथम अधिकरण के प्रारम्भ में ही स्वयं आचार्य ने इसे 'दण्ड नीति' नाम से सूचित किया है। शुक्राचार्य ने 'दण्डनीति' को इतनी महत्त्वपूर्ण विद्या बतलाया है कि इसमें अन्य सब विद्याओं का अन्तर्भाव मान लिया है—क्योंकि 'शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते' की उक्ति के अनुसार शस्त्र (दण्ड) द्वारा सुशासित तथा सुरक्षित देश में ही वेद आदि अन्य शास्त्रों की चिन्ता या अनुशीलन हो सकता है। अत: दण्डनीति को अन्य सब विद्याओं की आधारभूत विद्या के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है, और वही दण्डनीति अर्थशास्त्र है।

जिसे आजकल अर्थशास्त्र कहा जाता है, उसके लिए वार्ता शब्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि यह शब्द पूर्णतया अर्थशास्त्र का द्योतक नहीं। कौटिल्य ने वार्ता के तीन अंग कहे हैं—कृषि, वाणिज्य तथा पशु-पालन, जिनसे प्राय: वृत्ति या जीविका का उपार्जन किया जाता था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी इन तीन अंगों वाले वार्ताशास्त्र को स्वीकार किया है। पीछे शुक्राचार्य ने इस वार्ता में कुसीद (बैंकिंग) को भी वृत्ति के साधन-रूप में सम्मिलित कर दिया है। परन्तु अर्थशास्त्र को सभी शास्त्रकारों ने दण्डनीति, राजनीति अथवा शासनविज्ञान के रूप में ही वर्णित किया है। अत: 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को राजनीति की पुस्तक समझना ही ठीक होगा न कि सम्पत्तिशास्त्र की पुस्तक। वैसे इसमें कहीं-कहीं सम्पत्तिशास्त्र के धनोआदन, धनोपभोग तथा धन-विनिमय, धन-विभाजन आदि विषयों की भी प्रासंगिक चर्चा की गई है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के प्रथम अधिकरण का प्रारम्भिक वचन इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालने वाला है :

"पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यै: प्रस्तावितानि, प्रायश: तानि संहृत्य एकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।"

अर्थात्— प्राचीन आचार्यों ने पृथ्वी जीतने और पालन के उपाय बतलाने वाले जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं, प्राय: उन सबका सार लेकर इस एक अर्थशास्त्र का निर्माण किया गया है।

यह उद्धरण अर्थशास्त्र के विषय को जहाँ स्पष्ट करता है, वहाँ इस सत्य को भी प्रकाशित करता है कि 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' से पूर्व अनेक आचार्यों ने अर्थशास्त्र की रचनाएँ कीं, जिनका उद्देश्य पृथ्वी-विजय तथा उसके पालन के उपायों का प्रतिपादन करना था। उन आचार्यों तथा उनके सम्प्रदायों के कुछ नामों का निर्देशन 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में किया गया है, यद्यपि उनकी कृतियाँ आज उपलब्ध भी नहीं होतीं। ये नाम निम्नलिखित हैं :

(1) मानव-मनु के अनुयायी, (2) बार्हस्पत्य—बृहस्पति के अनुगामी, (3) औशनस—उशना अथवा शुक्राचार्य के मतानुयायी, (4) भारद्वाज (द्रोणाचार्य), (5) विशालाक्ष, (6) पराशर, (7) पिशुन (नारद), (8) कौणपदन्त (भीष्म), (9) वाताव्याधि, (उद्धव), (10) बाहुदन्ती-पुत्र (इन्द्र)।

अर्थशास्त्र के इन दस सम्प्रदायों के आचार्यों में प्राय: सभी के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ ज्ञात है, परन्तु विशालाक्ष के बारे में बहुत कम परिचय प्राप्त होता है। इन नामों से यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र या नीतिशास्त्र के प्रति अनेक महान् विचारकों तथा दार्शनिकों का ध्यान गया और इस विषय पर एक उज्ज्वल साहित्य का निर्माण हुआ। आज वह साहित्य लुप्त हो चुका है। अनेक विदेशी आक्रमणों तथा राज्यक्रान्तियों के कारण इस साहित्य का नाम-मात्र शेष रह गया है, परन्तु जितना भी साहित्य अवशिष्ट है वह एक विस्तृत अर्थशास्त्रीय परम्परा का संकेत करता है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में इन पूर्वाचार्यों के विभिन्न मतों का स्थान-स्थान पर संग्रह किया गया है और उनके शासन-सम्बन्धी सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

इस अर्थशास्त्र में एक ऐसी शासन-पद्धति का विधान किया गया है जिसमें राजा या शासक प्रजा का कल्याण-सम्पादन करने के लिए शासन करता है। राजा स्वेच्छाचारी होकर शासन नहीं कर सकता। उसे मन्त्रिपरिषद् की सहायता प्राप्त करके ही प्रजा पर शासन करना होता है। राज्य-पुरोहित राजा पर अंकुश के समान है, जो धर्म-मार्ग से च्युत होने पर राजा का नियन्त्रण कर सकता है और उसे कर्तव्य-पालन के लिए विवश कर सकता है।

सर्वलोकहितकारी राष्ट्र का जो स्वरूप कौटिल्य को अभिप्रेत है, वह 'अर्थशास्त्र' के निम्नलिखित वचन से अत्यन्त स्पष्ट है—

> प्रजा सुखे सुखं राज्ञ: प्रजानां च हिते हितम्।
> नात्मप्रियं प्रियं राज्ञ: प्रजानां तु प्रियं प्रियम्।। 1/19।।

अर्थात्— प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।

यह सत्य है कि कौटिल्य ने राष्ट्र की रक्षा के लिए गुप्त प्रणिधियों के एक विशाल संगठन का वर्णन किया है। शत्रुनाश के लिए विषकन्या, गणिका, औपनिषदिक प्रयोग, अभिचार मंत्र आदि अनैतिक एवं अनुचित उपायों का विधान है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए महान् धन-व्यय तथा धन-क्षय को भी (सुमहताऽपि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्य:) राष्ट्र-नीति के अनुकूल घोषित किया है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में ऐसी चर्चाओं को देखकर ही 'मुद्राराक्षसकार कवि विशाखदत्त' ने चाणक्य को कुटिलमति (कौटिल्य: कुटिलमति: कहा है और बाणभट्ट ने 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को 'निर्गुण' तथा 'अतिनृशंसप्रायोपदेशम्' (निर्दयता तथा नृशंसता का उपदेश देने वाला) कहकर निन्दित बतलाया है। 'मञ्जुश्री मूलकल्प' नाम की एक नवीन उपलब्ध ऐतिहासिक कृति में कौटिल्य को 'दुर्मति' 'क्रोधन' और 'पापक' पुकारकर गर्हा का पात्र प्रदर्शित किया गया है।

प्राच्यविद्या के विशेषज्ञ अनेक आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने भी उपर्युक्त अनैतिक व्यवस्थाओं को देखकर कौटिल्य की तुलना यूरोप के प्रसिद्ध लेखक और राजनीतिज्ञ मेकियावली से की है, जिसने अपनी पुस्तक 'दि प्रिन्स' में राजा को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उचित-अनुचित सभी साधनों का आश्रय लेने का उपदेश दिया है। विण्टरनिट्ज़ आदि पाश्चात्य विद्वान् कौटिल्य तथा मैकियावली में निम्नलिखित समानताएँ प्रदर्शित करते हैं :

(क) मेकियावली और कौटिल्य दोनों राष्ट्र को ही सब कुछ समझते हैं। वे राष्ट्र को अपने में ही उद्देश्य मानते हैं।

(ख) कौटिल्य-नीति का मुख्य आधार है, 'आत्मोदय: परग्लानि:' अर्थात् दूसरों की हानि पर अपना अभ्युदय करना। मेकियावली ने भी दूसरे देशों की हानि पर अपने देश की अभिवृद्धि करने का पक्ष-पोषण किया है। दोनों एक समान स्वीकार करते हैं कि इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए कितने भी धन तथा जन के व्यय से शत्रु का विनाश अवश्य करना चाहिए।

(ग) अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी भी साधन, नैतिक या अनैतिक, का आश्रय लेना

अनुचित नहीं है। मेकियावली और कौटिल्य दोनों का मत है कि साध्य को सिद्ध करना ही राजा का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। साधनों के औचित्य या अनौचित्य की उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

(घ) दोनों युद्ध को राष्ट्र-नीति का आवश्यक अंग मानते हैं। दोनों की सम्मति में प्रत्येक राष्ट्र को युद्ध के लिए उद्यत रहना चाहिए, क्योंकि इसी के द्वारा देश की सीमा तथा प्रभाव का विस्तार हो सकता है।

(च) अपनी प्रजा में आतंक स्थापित करके दृढ़ता तथा निर्दयता से उस पर शासन करना दोनों एक समान प्रतिपादित करते हैं। दोनों एक विशाल सुसंगठित गुप्तचर विभाग की स्थापना का समर्थन करते हैं, जो प्रजा के प्रत्येक पार्श्व में प्रवेश करके राजा के प्रति उसकी भक्ति की परीक्षा करे और शत्रु से सहानुभूति रखने वाले लोगों को गुप्त उपायों से नष्ट करने का यत्न करे।

हमारी सम्मति में कौटिल्य तथा मेकियावली में ऐसी सदृशता दिखाना युक्तिसंगत नहीं। निस्सन्देह कौटिल्य भी मेकियावली के समान यथार्थवादी था और केवल आदर्शवाद का अनुयायी न था। परन्तु यह कहना कि कौटिल्य ने धर्म या नैतिकता को सर्वथा तिलांज्जलि दे दी थी, सत्यता के विपरीत होगा। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के प्रथम अधिकरण में ही स्थापना की है :

तस्मात् स्वधर्म भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्म सन्दधानो हि, प्रेत्य चेह च नन्दति।। **(1/3)**

अर्थात्–राजा प्रजा को अपने धर्म से च्युत न होने दे। राजा भी अपने धर्म का आचरण करे। जो राजा अपने धर्म का इस भांति आचरण करता है, वह इस लोक और परलोक में सुखी रहता है।

इसी प्रथम अधिकरण में ही राजा द्वारा अमर्यादाओं को व्यवस्थित करने पर भी बल दिया गया हैं और वर्ण तथा आश्रम-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए आदेश दिया गया है। यहाँ पर त्रयी तथा वैदिक अनुष्ठान को प्रजा के संरक्षण का मूल आधार बतलाया गया है। कौटिल्य ने स्थान-स्थान पर राजा को वृद्धों की संगत करने वाला, विद्या से विनम्र, जितेन्द्रिय और काम-क्रोध आदि शत्रु-षड्वर्ग का दमन करने वाला कहा है। ऐसा राजा अधार्मिक अथवा अत्याचारी बनकर किस प्रकार प्रजा-पीड़न कर सकता है? इसके विपरीत राजा को प्रजा के लिए पितृ-तुल्य कहा गया है, जो अपनी प्रजा का पालन-पोषण, संवर्धन, संरक्षण, भरण, शिक्षण इत्यादि वैसा ही करता है जैसा वह अपनी सन्तान का करता है।

यह ठीक है कि कौटिल्य ने शत्रुनाश के लिए अनैतिक उपायों के करने का भी उपदेश दिया है। परन्तु इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र के निम्न वचन को नहीं भूलना चाहिए :

एवं दूष्येषु अधार्मिकेषु वर्तत, न इतरेषु। (5/2)

अर्थात्– इन कूटनीति के उपायों का व्यवहार केवल अधार्मिक एवं दुष्ट लोगों के साथ ही करे, धार्मिक लोगों के साथ नहीं। (धर्मयुद्ध में भी अधार्मिक व्यवहार सर्वथा वर्जित था। केवल कूट-युद्ध में अधार्मिक शत्रु को नष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता था।)

मेकियावली तो सज्जन-दुर्जन, धार्मिक-अधार्मिक का कोई विवेक नहीं करता। वह सबके साथ कूटनीति का प्रयोग करके अपने राजा को ऐश्वर्यशाली और शक्तिसम्पन्न बनाने का उपदेश देता है।

इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डी. कालिदास नाग के निम्नलिखित विचार भी मनन योग्य हैं। इनसे 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' की वस्तुस्थिति तथा आचार्य कौटिल्य का यथार्थ स्वरूप अवगत होता है :

"हिन्दू मेकियावली कहा जाने वाला कौटिल्य विचारों में स्वतन्त्र होता हुआ भी अनैतिकता का उपदेश नहीं देता। जब युद्ध तथा शान्ति के लाभ समान दृष्टिगोचर होते हैं, आचार्य चाणक्य का मत है कि शान्ति का वरण करना चाहिए, क्योंकि युद्ध में क्षय, व्यय, पाप एवं सर्वनाश ही होता है। सभी धर्माचार्यों का यही मत है कि साम, दाम, भेद उपायों के निष्फल हो जाने के बाद ही दण्ड का अन्तिम उपाय के रूप में आश्रय लेना चाहिए। और जब युद्ध करना ही पड़े तो उसकी समाप्ति पर शीघ्र सन्धि की स्थापना कर देनी चाहिए।"

विशाखदत्त तथा मञ्जुश्री मूलकल्प के कर्ता का कौटिल्य को कुटिलमति' या 'दुर्मति' कहने का इतना ही अभिप्राय है कि वे उसे कूटनीति का पण्डित समझते थे। उसके अर्थशास्त्र को 'निर्धृण' या नृशंस-आयोपदेश' कहने का यही तात्पर्य है कि कौटिल्य कूट युद्ध में अधार्मिक शत्रु का अधार्मिक प्रयोगों द्वारा नाश करना नीतिशास्त्र के अनुकूल स्वीकार करता था। वेद में भी मायावी शत्रु के साथ माया युद्ध करने का समर्थन किया गया है (ऋग्वेद 1/2/1)। महाभारत 2/69) तथा शुक्रनीति (5/10) ने भी पापाचारी शत्रु के पाप, प्रवञ्चना तथा पाशविकता के उत्तर में कूट युद्ध की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि यदि "शत्रु शठता का प्रयोग करे, तो उसका उत्तर शठता में

देना उचित है। यदि वह धर्मपूर्वक आचरण करे तो उससे धर्मयुद्ध ही करना चाहिए।”

अत: कौटिल्य को भारत का मेकियावली बतलाना हमारी सम्मति में उनके साथ अन्याय करना होगा। पाश्चात्य विद्वानों का उसके प्रति ऐसा विचार रखना हिन्दू संस्कृति की उदात्तता को कम करने का यत्नमात्र है। आचार्य चाणक्य निःस्वार्थ, त्याग-भावना से ओत-प्रोत एवं विद्वत्ता से समादृत भारत की ब्राह्मणत्व परम्परा का समुज्ज्वल प्रतीक था, जिसने बिखरे हुए भारतीय जीवन-तत्त्वों को सर्वप्रथम अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा एकराष्ट्रीयता के मांगलिक सूत्र में ग्रथित किया और एक महान् राष्ट्र की स्थापना की। उस विशाल मौर्य साम्राज्य का संस्थापक तथा प्रधानामात्य होता हुआ भी वह कितना निरीह एवं निर्मोह था, इसका सुन्दर चित्रण विशाखदत्त ने ही इस अमर वाणी में किया है:

उपलशकलमेतद् भेदर्क गोमयानां
वदुभिरुपहतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुध्यमलाभिराभिः
उपनतपटलानां दृश्यते जीर्णकुड्यम्।।

अर्थात्– यह देखो, आचार्य चाणक्य की कुटिया है, जहाँ एक तरफ गोबर के उपलों को तोड़ने वाला पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, दूसरी तरफ विद्यार्थियों द्वारा लाई गई कुशा का ढेर रखा हुआ है। इस कुटिया की भित्तियाँ जीर्ण हो रही हैं और छत यज्ञ के लिए सुखाई जाती हुई समिधाओं के बोझ से झुकी हुई दिखाई देती है।

भारत की इस सात्त्विक ब्राह्मणत्व परम्परा के प्रतीक कौटिल्य को भौतिकतावादी एवं अनैतिकता के प्रचारक मेकियावली का समकक्ष कहना अपनी अनभिज्ञता को ही प्रकट करना है। कौटिल्य महाब्राह्मण, महापण्डित, महान् नीतिशास्त्रवेत्ता और भारत का महान् नेता था। उसी की अनुपम कृति ‘अर्थशास्त्र’ का यह संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर हिन्दी जगत् की सेवा में प्रस्तुत है।

नई दिल्ली

–इन्द्र

सूची

प्रथम अधिकरण
राज्य में अनुशासन की स्थापना

1.चार विद्याएँ तथा उनके उद्देश्य
2.वृद्धों की संगति तथा जितेन्द्रियता
3.अमात्यों की नियुक्ति, योग्यता तथा उनके कर्तव्य
4. गुप्तचरों की नियुक्ति
5. राजदूतों की नियुक्ति तथा उनके कर्तव्य
6. राजा के कर्तव्य तथा उसकी दिनचर्या

द्वितीय अधिकरण
राज्य में अध्यक्षों की नियुक्ति

1. ग्रामों को बसाना तथा उनकी व्यवस्था
2. दुर्गों तथा नगरों का निर्माण
3. समाहर्ता, गाणनिक और सन्निधाता अध्यक्ष के कर्तव्य
4. पण्याध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष और शुल्काध्यक्ष के कर्तव्य
5. सीताध्यक्ष, गोऽध्यक्ष और सूताध्यक्ष के कर्तव्य
6. सूत्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष और गणिकाध्यक्ष के कर्तव्य
7. सेनाध्यक्षों (अश्व, हस्ती, रथ, पत्यध्यक्षों) के कर्तव्य
8. नगराध्यक्ष (नागरिक) के कर्तव्य

तृतीय अधिकरण
राज्य में कानून की व्यवस्था

1.व्यवहार की स्थापना और विवाद-लेखन
2.विवाह, स्त्रीधन, आधिवेदनिक, विवाह-विच्छेद तथा पुनर्विवाह
3.दायभाग का कानून
4.ऋण, धरोहर, गिरवी आदि का कानून
5.दास, कर्मकर, उनके वेतन आदि का कानून

चतुर्थ अधिकरण
प्रजापीड़कों से प्रजा की रक्षा

1.शिल्पियों से प्रजा की रक्षा
2.व्यापारियों से प्रजा की रक्षा
3. दैवी आपत्तियों से प्रजा की रक्षा
4. अपराधियों (चोरों, घातकों) आदि की पहचान
5. अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था

पंचम अधिकरण
राज्य-कर्मचारियों पर नियन्त्रण

1.अयोग्य कर्मचारियों को दण्ड की व्यवस्था
2.कर्मचारियों की वेतन-व्यवस्था

3.राज्य-कर्मचारियों का कर्तव्य

षष्ठ अधिकरण
राज्य-सत्ता के सात अंग

1.राज्य-सत्ता की सात प्रकृतियां वा अंग
2.कोष संग्रह के नियम तथा उपाय
3.दण्ड तथा मित्र-बल का संग्रह
4.राज्यांगों की विपत्तियों का सापेक्ष महत्त्व
5. राज्य-संकटों का निवारण

सप्तम अधिकरण
राज्य में षड्गुणों की व्यवस्था

1.षड्गुण तथा उनके उद्देश्य
2.सन्धि का निरूपण तथा उसके प्रकार
3.विग्रह वा युद्ध का समय
4.आसन व चुप बैठना
5.यान अथवा युद्ध के लिए प्रस्थान
6.संश्रयवृद्धि के लाभ
7.द्वैधीभाव नीति का प्रयोग

अष्टम अधिकरण
विजय-यात्रा तथा सेना-व्यवस्था

1. विजय-यात्रा की तैयारी
2. युद्ध के क्षय, व्यय तथा लाभ का विचार
3. बाह्य तथा आभ्यन्तर विपत्तियों का विचार
4. सेना-शिविर की योजना तथा सेना-प्रस्थान
5. अश्व, हस्ति, रथ, पदाति सेनाओं के काम
6. विजय तथा पराजय

नवम अधिकरण
कूट युद्ध की रचना

1.कूट युद्ध अथवा मन्त्र युद्ध
2.अतिसन्धान (छल) द्वारा शत्रु-नाश
3.उपजाप (भेद-नीति) द्वारा शत्रुनाश
4.संघों का (भेद नीति द्वारा) वश में करना
5.विजित देश में विजेता का व्यवहार

दशम अधिकरण
शत्रुनाश के अद्भुत औपनिषदिक उपाय

1.शत्रुनाश के लिए विषैली औषधियों का प्रयोग
2. शत्रुनाश के लिए माया का प्रयोग
3.शत्रुनाश के लिए मन्त्रों का प्रयोग

प्रथम अधिकरण

राज्य में अनुशासन की स्थापना

1. चार विद्याएं तथा उनके उद्देश्य

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथ्वी मुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः।।

विद्या द्वारा विनय को धारण करने वाला राजा ही प्रजाओं में विनय अथवा अनुशासन की स्थापना कर सकता है। वह सर्व-लोक-हित में तत्पर रहता हुआ, शत्रुरहित होकर, पृथ्वी का भोग करता है।

विद्याएँ चार हैं-आन्वीक्षिकी (सूक्ष्म तत्त्वों का अन्वीक्षण कराने वाली, दर्शन-विद्या), त्रयी (वेद-विद्या), वार्त्ता (वृत्ति अथवा जीविका को सिखाने वाली, अर्थ-विद्या) तथा दण्डनीति (राज्य में दंड-व्यवस्था रखने वाली, शासन-विद्या)।

मनु के मत को मानने वालों का कथन है कि विद्याएँ तीन है-त्रयी, वार्त्ता तथा दण्डनीति। आन्वीक्षिकी तो त्रयी के अन्तर्गत है। बृहस्पति आचार्य के मतानुयायियों की धारणा है कि विद्याएं दो ही हैं—वार्त्ता और दण्डनीति। त्रयी तो लोकयात्रा में चतुर व्यक्तियों के हाथ में आडम्बरमात्र है। शुक्राचार्य के अनुगामियों का मत है कि विद्या तो केवल एक ही है—दण्डनीति। इसी में अन्य सब विद्याओं का अन्तर्भाव हो जाता है। राज्य-व्यवस्था के शांतिपूर्वक चलने पर ही सारी विद्याओं के व्यवहार की सिद्धि होती है, अत: दण्डनीति ही एकमात्र विद्या है।

आचार्य चाणक्य की स्थापना है कि विद्याएँ तो चार ही हैं। इन्हीं चारों से धर्म, अधर्म एवम् अर्थ, अनर्थ का ज्ञान हो सकता है। इन्हीं से अभुदय तथा निःश्रेयस् का बोध होता है। इन्हें जाने बिना इहलोक और परलोक में उन्नति नहीं की जा सकती।

सांख्य, योग तथा न्याय, दर्शन आन्वीक्षिकी के मुख्य अंग हैं। त्रयी में धर्म तथा अधर्म की व्यवस्था है। वार्त्ता में धन तथा धनागम के साधनों की चर्चा है। दण्डनीति में राजनीति तथा दुनीति का वर्णन है। इनमें आन्वीक्षिकी सब विद्याओं की दीपक, सब कार्यों की साधक और सब धर्मों की सर्वदा आश्रयभूत मानी जाती है। यह तर्कशक्ति, वाक्चातुरी, बुद्धिमत्ता एवं क्रिया-कुशलता को उत्पन्न करती है और इस तरह संसार का उपकार करने वाली है।

साम, ऋक् और यजुर्वेद—इन तीन वेदों को त्रयी-विद्या कहते हैं। अथर्ववेद तथा इतिहासवेद की भी वेद संज्ञा है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र और ज्योतिष-ये वेद के छ: अग हैं।

वेद चारों वर्णों तथा आश्रमों के धर्म का प्रतिपादन करते हैं। ब्राह्मण का अपना धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान देना और लेना है। क्षत्रिय का धर्म अध्ययन; यजन, दान, शस्त्र से जीविका करना तथा प्रजा की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य है। शूद्र का धर्म द्विजाति-सेवा, कृषि, पशुपालन, शिल्प तथा नटभाट का कार्य है।

गृहस्थ का कार्य अपने धर्म के अनुसार जीविकोपार्जन करना, तुल्य तथा भिन्न गोत्र वाली स्त्री के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, ऋतु-गामी होना और देव, पितर, अतिथि तथा भृत्यों को देकर पीछे स्वयं भोजन करना है।

ब्रह्मचारी का कर्तव्य स्वाध्याय, अग्निहोत्र, स्नान, भिक्षावृत्ति तथा गुरु की आजीवन सेवा करना है। वानप्रस्थ का कर्तव्य ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, भूमि पर सोना, जटा और मृगचर्म का धारण करना, अग्निहोत्र, स्नान, देव, पितर, अतिथि की पूजा तथा वन के आहार का ग्रहण करना है।

इंद्रियों को जीतना, किसी कर्म के फल में आसक्ति न रखना, अकिंचन होकर रहना, स्त्रीसंग का त्याग, भिक्षावृत्ति, अनेक स्थानों या वन में निवास और शरीर तथा मन को शुद्ध रखना—ये संन्यासी के कर्तव्य हैं।